

महाभारतकालीन संस्कृति में शिक्षा-व्यवस्था एवं उसकी समकालीन उपादेयता (भारतीय ज्ञान-परम्परा के विशेष परिप्रेक्ष्य में)

विष्वक्सेन दत्त द्विवेदी

<https://doi.org/10.61410/had.v21i3.357>

सारांश

महाभारत भारतीय सांस्कृतिक चेतना का केवल महाकाव्यात्मक आख्यान नहीं, अपितु धर्म, दर्शन, राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था, युद्धविद्या, लोकनीति और जीवन-मूल्यों का विराट ज्ञानकोश है। इसकी कथाभूमि में शिक्षा किसी पृथक् संस्थागत गतिविधि के रूप में न होकर जीवन-निर्माण की समग्र प्रक्रिया के रूप में अभिव्यक्त होती है। आश्रम, आचार्य, अन्तेवासी, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, सेवा, अनुशासन, अभ्यास, शस्त्र-शिक्षा, शास्त्राध्ययन, अनुभवात्मक अधिगम, परीक्षा, गुरुदक्षिणा तथा चरित्र-निर्माण-इन सभी तत्त्वों का विविध प्रसंगों में सजीव निरूपण मिलता है।

प्रस्तुत शोधालेख में महाभारत के आदिपर्व, उद्योगपर्व, द्रोणपर्व, शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व आदि में उपलब्ध शैक्षिक संकेतों का पाठाधारित एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। विशेषतः धौम्य के शिष्यों उपमन्यु और आरुणि का प्रसंग, द्रोणाचार्य के अधीन कौरव-पाण्डवों की अस्त्र-शिक्षा, अर्जुन की साधना, एकलव्य का स्वाध्याय, स्त्री-पात्रों की बौद्धिक उपस्थिति तथा शान्तिपर्व की राजधर्मपरक शिक्षा-दृष्टि को अलग-अलग वैचारिक स्तरों पर पढ़ा गया है।

महाभारतीय शिक्षा-दृष्टि का मूल प्रयोजन केवल दक्षता-प्राप्ति नहीं, बल्कि ज्ञान को विनय, आत्मसंयम, कर्तव्यबोध, विवेक और लोकहित से जोड़ना है। इस दृष्टि से शिक्षा का मूल्य उसके प्रमाणपत्र में नहीं, उसके द्वारा निर्मित मनुष्य और उसके आचरण में निहित है। साथ ही एकलव्य-प्रसंग यह भी दिखाता है कि प्रतिभा, संस्थागत मान्यता और ज्ञान तक पहुँच के प्रश्न सदैव सरल नहीं रहे; अतः महाभारतीय शिक्षा-विमर्श का आधुनिक पुनर्पाठ आलोचनात्मक होना चाहिए।

समकालीन शिक्षा के संदर्भ में महाभारतीय सूत्रों की उपादेयता गुरु-शिष्य संवाद, अनुभवात्मक अधिगम, सतत अभ्यास, स्वाध्याय, बहुविषयकता, नैतिक नेतृत्व, आत्मानुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखी जा सकती है। इन तत्त्वों को आधुनिक लोकतांत्रिक, समतामूलक, वैज्ञानिक और संवैधानिक संदर्भ में रचनात्मक रूप से रूपान्तरित करना ही भारतीय ज्ञान-परम्परा के साथ सार्थक संवाद होगा।

बीज-शब्द: महाभारत, शिक्षा-व्यवस्था, गुरु-शिष्य परम्परा, आश्रम-शिक्षा, धौम्य, द्रोणाचार्य, एकलव्य, अर्जुन, अनुभवात्मक अधिगम, स्वाध्याय, विद्या-विनय, भारतीय ज्ञान-परम्परा।

- अध्यापक, संस्कृत, उच्च माध्यमिक विद्यालय बसन्तपुर, जिला—सिवान, बिहार

Abstract

The Mahābhārata is not merely an epic narrative but a vast intellectual archive of Indian civilization, encompassing ethics, philosophy, polity, social organization, economy, warfare and cultural values. Its educational imagination is embedded in the larger process of life-formation rather than confined to a formal institution.

This paper critically examines the educational dimensions represented in the Mahābhārata through distinct pedagogical themes: the āśrama as a lived learning environment, the guru–śiṣya relationship, Arjuna's disciplined practice, Ekalavya's self-directed learning, the integration of knowledge and skill, women's intellectual presence, and the relation between education, ethical leadership and public welfare.

The study argues that Mahābhārata does not reduce education to information or technical competence. It connects knowledge with discipline, humility, self-mastery, duty and social responsibility. At the same time, the Ekalavya episode reveals tensions concerning institutional access and recognition; therefore, the educational legacy of the epic requires critical rather than romantic reconstruction.

In contemporary education, these principles may enter into dialogue with mentorship, experiential learning, competency development, self-directed learning, multidisciplinary education, ethical leadership and inclusive education, provided that historical differences and modern constitutional commitments are kept clearly in view.

Keywords: Mahābhārata, Education, Guru–Śiṣya Tradition, Āśrama Education, Dharma, Droṇa, Ekalavya, Arjuna, Experiential Learning, Self-directed Learning, Indian Knowledge Systems.

1. प्रस्तावना एवं वैचारिक पृष्ठभूमि

भारतीय संस्कृति में शिक्षा का अर्थ केवल पाठ्यवस्तु का अर्जन नहीं रहा। शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित सम्भावनाओं के विकास, उसके आचरण के परिष्कार और उसे सामाजिक उत्तरदायित्व के योग्य बनाने की प्रक्रिया है। इसी कारण भारतीय परम्परा में ज्ञान और आचरण, अध्ययन और साधना तथा विद्या और जीवन-मूल्य परस्पर पृथक् नहीं माने गए।

महाभारत में शिक्षा की कोई एक पृथक् परिभाषा नहीं मिलती, किन्तु उसका आख्यान शिक्षा की अनेक प्रक्रियाओं का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करता है। धौम्य के आश्रम में शिष्य-सेवा से लेकर द्रोणाचार्य के सैन्य प्रशिक्षण तक, अर्जुन की एकाग्र साधना से लेकर एकलव्य के स्वाध्याय तक और विदुर की नीतिशिक्षा से लेकर शान्तिपर्व के राजधर्म-विमर्श तक शिक्षा के विविध आयाम उपस्थित हैं।

इस आलेख का प्रयत्न इन प्रसंगों को एक ही 'गुरुकुल-मॉडल' में समेटना नहीं, बल्कि उनके भीतर निहित भिन्न-भिन्न शैक्षिक तत्त्वों को पहचानना है।

2. शोध-समस्या एवं अन्वेषणीय प्रश्न

समकालीन शिक्षा में सूचना, तकनीकी दक्षता और प्रमाणपत्रों का विस्तार हुआ है, किन्तु शिक्षा के नैतिक, मानवीय और सामाजिक पक्ष को लेकर निरन्तर विमर्श आवश्यक है। इस संदर्भ में प्रश्न उठता है कि महाभारत शिक्षा को किस प्रकार ज्ञान, अभ्यास, अनुशासन, आत्मसंयम और लोकदायित्व से जोड़ता है।

मुख्य प्रश्न हैं—महाभारत में शिक्षा का प्रयोजन क्या है? गुरु-शिष्य सम्बन्ध का नैतिक आधार क्या है? आश्रम-शिक्षा में सेवा और अनुभव की भूमिका क्या है? अर्जुन और एकलव्य के प्रसंगों से अभ्यास और स्वाध्याय के कौन-से आयाम सामने आते हैं? शिक्षा की सामाजिक पहुँच का प्रश्न किस प्रकार उपस्थित होता है? और इन सूत्रों का आधुनिक समावेशी एवं लोकतांत्रिक शिक्षा से किस प्रकार वैचारिक संवाद सम्भव है?

3. शोध के उद्देश्य

महाभारत में निहित शिक्षा-संस्कृति का पाठाधारित अनुशीलन; गुरु-शिष्य सम्बन्ध की प्रकृति का विश्लेषण; आश्रम-शिक्षा की अनुभवात्मक संरचना का अध्ययन; शास्त्र और शस्त्र के समन्वय का विवेचन; स्वाध्याय एवं अभ्यास की भूमिका का परीक्षण; एकलव्य-प्रसंग के माध्यम से शिक्षा की सामाजिक पहुँच का आलोचनात्मक अध्ययन; तथा महाभारतीय शिक्षा-दृष्टि की समकालीन उपादेयता का विवेचन—इस शोध के प्रमुख उद्देश्य हैं।

4. शोध-प्रविधि एवं स्रोत

प्रस्तुत शोधालेख पाठालोचनात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक एवं तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक स्रोत के रूप में महाभारत के आदिपर्व, उद्योगपर्व, द्रोणपर्व, शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व को ग्रहण किया गया है। सहायक स्रोतों में श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद्-परम्परा, कौटिलीय अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्रीय साहित्य, भारतीय शिक्षा-परम्परा पर आधुनिक शोध तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सम्मिलित हैं।

5. महाभारत में शिक्षा का दार्शनिक आधार

महाभारतीय शिक्षा-दृष्टि को समझने के लिए 'विद्या' को केवल सूचना-संचय के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। ज्ञान का लक्ष्य अन्तःपरिवर्तन है—विवेक का जागरण, आत्मसंयम, कर्तव्यबोध और जीवन के व्यापक प्रयोजन की पहचान। इसीलिए शिक्षा का प्रश्न अन्ततः 'मनुष्य कैसा बने?' के प्रश्न से जुड़ता है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते¹

गीता का यह सूत्र ज्ञान की पवित्रकारी शक्ति को रेखांकित करता है। यहाँ 'पवित्रता' केवल बाह्य आचार नहीं, बल्कि दृष्टि के परिष्कार का संकेत है। महाभारतीय शिक्षा-विमर्श में ज्ञान की यही अन्तःपरिवर्तनकारी भूमिका आगे चलकर विनय, आत्मसंयम और कर्तव्य के रूप में प्रकट होती है।

विद्याभ्यासैर्वृद्धयोगैरात्मानं विनयं नयेत्।

विद्या धर्मार्थफलिनी तद्विदो वृद्धसंज्ञिताः।¹

इस श्लोक को शिक्षा की सामान्य परिभाषा के रूप में उद्धृत करने के बजाय यहाँ इसके दार्शनिक आशय पर ध्यान देना चाहिए—विद्या का परिपाक 'विनय' है और विनय का परिपाक धर्मार्थ-संपन्न आचरण। अर्थात् ज्ञान का मूल्य उसके सामाजिक-नैतिक फल से निर्धारित होता है।

6. आश्रम : शिक्षा का जीवन्त परिवेश

धौम्य-आश्रम का प्रसंग शिक्षा को निवास, श्रम, सेवा, अनुशासन और समस्या-समाधान के जीवन्त परिवेश से जोड़ता है। आरुणि का प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि यहाँ शिष्य को किसी अमूर्त सिद्धान्त का पाठ नहीं पढ़ाया जाता; वह वास्तविक परिस्थिति में उपस्थित समस्या का समाधान खोजता है।

स उपाध्यायेन संदिष्ट आरुणिः पाञ्चाल्यस्तत्र गत्वा तत्केदारखण्डं बद्धुं नाशक्नोत्।... स तत्र संविवेश केदारखण्डे शयाने तस्मिंस्तदुदकं तस्थौ।²

यहाँ 'करके सीखना' शिक्षा की गहरी संरचना बन जाता है। आरुणि की क्रिया केवल आज्ञापालन नहीं; असफल प्रयास के बाद स्वयं उपाय खोजने की क्षमता भी है। अतः आश्रम-शिक्षा को केवल गुरु-आज्ञा-केन्द्रित व्यवस्था मानना उसके अनुभवात्मक आयाम को कम कर देना होगा।

उपमन्यु का प्रसंग भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है कि शिष्य का शिक्षण केवल कक्षा में नहीं, उसकी दैनिक जीवन-चर्या, श्रम, संयम और कठिनाई से जूझने की क्षमता में घटित होता है। इस प्रकार आश्रम 'learning environment' नहीं, बल्कि जीवन-पर्यावरण है।

7. गुरु-शिष्य सम्बन्ध : ज्ञान-संक्रमण से व्यक्तित्व-संस्कार तक

महाभारत में गुरु-शिष्य सम्बन्ध का स्वरूप केवल विषय-ज्ञान देने वाले विशेषज्ञ और ज्ञान ग्रहण करने वाले विद्यार्थी का सम्बन्ध नहीं है। इसमें श्रद्धा, संवाद, अनुशासन, परीक्षण और उत्तरदायित्व के तत्व जुड़े हैं। फिर भी इस सम्बन्ध को निरपेक्ष आदर्श मानना उचित नहीं; द्रोण और एकलव्य का प्रसंग गुरु-अधिकार, शिष्यता और संस्थागत मान्यता के बीच तनाव भी दिखाता है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।⁴

इस सूत्र में शिक्षा की त्रयी—प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा—महत्त्वपूर्ण है। विशेषतः ‘परिप्रश्न’ बताता है कि भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा का स्वस्थ रूप केवल मौन आज्ञापालन नहीं, बल्कि जिज्ञासा और संवाद पर भी आधारित है। आधुनिक mentorship की अवधारणा के लिए यही पक्ष अधिक रचनात्मक है।

8. अर्जुन : अभ्यास, एकाग्रता और दक्षता

अर्जुन का शैक्षिक प्रतिमान केवल ‘प्रतिभा’ का प्रतिमान नहीं है। आदिपर्व में उसके निरन्तर अभ्यास और रात्रि में धनुर्विद्या के अभ्यास का प्रसंग यह संकेत करता है कि दक्षता अर्जित प्रतिभा को अनुशासित अभ्यास में बदलने से उत्पन्न होती है।

अर्जुनस्तु परं यत्नमातस्थे गुरुपूजने।

अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाभवत्।⁵

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।⁶

यहाँ अभ्यास को केवल यांत्रिक पुनरावृत्ति न मानकर चित्त की स्थिरता से जोड़ना आवश्यक है। अर्जुन की शिक्षा में गुरु-निर्देश और आत्मप्रेरित साधना का संयोग है। इसलिए उसका आधुनिक शैक्षिक संवाद ‘competency’ से अधिक ‘deliberate practice’ और self-regulation के साथ स्थापित किया जा सकता है।

9. एकलव्य : स्वाध्याय, प्रतिभा और संस्थागत पहुँच

एकलव्य-प्रसंग को केवल गुरु-भक्ति अथवा त्याग की कथा के रूप में पढ़ना उसके वैचारिक आयाम को संकुचित कर देता है। एकलव्य का निर्माण स्वाध्याय, अनुकरण, कठोर अभ्यास और लक्ष्य-साधना से होता है; साथ ही उसका प्रसंग औपचारिक शिक्षण तक पहुँच और सामाजिक मान्यता के प्रश्न को भी उद्घाटित करता है।

अर्जुनस्तु परं यत्नमातस्थे गुरुपूजने।⁵

महाभारतम्, आदिपर्व 1.123.1

ततो द्रोणोऽब्रवीद्राजन्नेकलव्यमिदं वचः।

यदि शिष्योऽसि मे तूर्णं वेतनं संप्रदीयताम्।⁷

महाभारतम्, आदिपर्व 1.123.33

एकलव्य के प्रसंग में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह औपचारिक शिष्यता के बाहर रहकर भी एक गुरु-प्रतिमा को केन्द्र बनाकर अभ्यास करता है। अतः स्वाध्याय की शक्ति और संस्थागत पहुँच—दोनों को एक साथ देखना चाहिए। आधुनिक शिक्षा में इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि प्रतिभा और सीखने की आकांक्षा को अवसर, संसाधन और मान्यता की समान उपलब्धता से जोड़ना आवश्यक है।

द्रोण द्वारा अंगुष्ठ की माँग का पाठ यह भी दिखाता है कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध में शक्ति-सन्तुलन का प्रश्न उपेक्षणीय नहीं है। इसलिए एकलव्य का आधुनिक पुनर्पाठ श्रद्धा और आलोचना—दोनों को साथ लेकर होना चाहिए।

10. शास्त्र और शस्त्र : बहुविषयक शिक्षा की संरचना

महाभारतीय राजकीय शिक्षा में धनुर्वेद, अस्त्र-शस्त्र, अश्वारोहण, गजारोहण, रथयुद्ध, नीति, इतिहास, पुराण और आचार-विचार का समावेश दिखाई देता है। शिक्षा का यह रूप ज्ञान को एक ही विषय-सीमा में बन्द नहीं करता, बल्कि कौशल, विवेक और व्यवहार को परस्पर जोड़ता है।

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।

*इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।*⁸ श्रीमद्भगवद्गीता 2.4

यह श्लोक युद्धकौशल के साथ नैतिक विवेक के द्वन्द्व को सामने लाता है। अर्जुन के लिए समस्या यह नहीं कि वह युद्ध-कौशल जानता है या नहीं; समस्या यह है कि कौशल का प्रयोग किन मानवीय सम्बन्धों और नैतिक दायित्वों के बीच किया जाए। इस प्रकार महाभारतीय शिक्षा में skill और ethical judgement का सम्बन्ध मूलभूत है।

11. अनुभव, कर्म और कौशल : शिक्षा का क्रियात्मक पक्ष

आरुणि, उपमन्यु और अर्जुन के प्रसंगों को एक ही 'अनुभवात्मक शिक्षा' के शीर्षक में रख देना पर्याप्त नहीं है। आरुणि समस्या-समाधान का, उपमन्यु अनुशासन और धैर्य का, जबकि अर्जुन deliberate practice का उदाहरण प्रस्तुत करता है। तीनों में शिक्षा का स्वरूप क्रियात्मक है, परन्तु उनके शैक्षिक परिणाम अलग हैं।

*योगः कर्मसु कौशलम्।*⁹ श्रीमद्भगवद्गीता 2.50

'कौशल' यहाँ मात्र तकनीकी दक्षता नहीं है; कर्म के विवेकपूर्ण, संतुलित और उत्तरदायी निष्पादन का बोध है। इसीलिए महाभारतीय शिक्षा में 'करके सीखना' तभी पूर्ण होता है जब कर्म के साथ विवेक और उत्तरदायित्व भी विकसित हों।

12. विद्या, विनय और आत्मसंयम

शिक्षा के दार्शनिक और व्यावहारिक पक्षों को जोड़ने वाली कड़ी विनय है। यहाँ विनय का अर्थ केवल शिष्ट व्यवहार नहीं, बल्कि अहंकार-नियमन, सीखने की तत्परता और आत्मसंयम है। इसी कारण शिक्षा का वास्तविक परीक्षण व्यक्ति की प्रतिक्रिया, निर्णय और व्यवहार में होता है।

विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

*शुनि चौव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥*¹⁰ श्रीमद्भगवद्गीता 5.18

यह श्लोक शिक्षा को सामाजिक दृष्टि के परिष्कार से जोड़ता है। 'समदर्शिता' का आशय सभी व्यक्तियों की सामाजिक भूमिकाओं को एक समान घोषित करना नहीं, बल्कि ज्ञानवान की दृष्टि में अन्तर्निहित मानवीय सत्ता के प्रति समत्व है। इस दृष्टि से शिक्षा का उच्चतर लक्ष्य दृष्टि-परिवर्तन है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

*आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।*¹¹ श्रीमद्भगवद्गीता 6.5

आत्मोन्नति का यह सूत्र शिक्षा को बाहरी अनुशासन से आगे आत्मनियमन की दिशा देता है। आधुनिक शिक्षा में **self-regulation, reflective learning** और **lifelong learning** की अवधारणाओं से इसका वैचारिक संवाद स्थापित किया जा सकता है।

13. शिक्षा और चरित्र-निर्माण : नेतृत्व का आत्मानुशासन

महाभारत में शिक्षा का चरित्र-निर्माणकारी पक्ष नेतृत्व के प्रश्न से जुड़ता है। जो व्यक्ति दूसरों को दिशा देना चाहता है, उसके लिए पहले स्वयं पर शासन आवश्यक माना गया है। यह विचार शिक्षक, प्रशासक और सार्वजनिक नेतृत्व—तीनों पर लागू होता है।

आत्मानमेव प्रथमं विनयैरुपपादयेत्।

*अनु भृत्यान् प्रजाः पश्चादित्येष विनयक्रमः।*¹² महाभारतम्, शान्तिपर्व 68.12

इस सूत्र का गहन शैक्षिक अर्थ यह है कि अनुशासन का नैतिक अधिकार आत्मानुशासन से उत्पन्न होता है। आधुनिक शिक्षक-शिक्षा में **professional ethics, reflective practice** व **role-modeling** की चर्चा इसी बिन्दु से सार्थक रूप से जोड़ी जा सकती है।

14. स्त्री-शिक्षा : बौद्धिक उपस्थिति और ऐतिहासिक सीमाएँ

महाभारत की स्त्री-पात्रों में द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी और सुभद्रा आदि केवल कथा-प्रसंगों की सहभागी नहीं, बल्कि धर्म, न्याय, राजनीति और पारिवारिक उत्तरदायित्व पर विचार व्यक्त करने वाली व्यक्तित्ववान् स्त्रियाँ हैं। द्रौपदी के प्रश्न विशेषतः न्यायिक और नैतिक तर्कशीलता का परिचय देते हैं।

फिर भी बौद्धिक उपस्थिति को सार्वभौमिक संस्थागत शिक्षा का प्रमाण मानना ऐतिहासिक रूप से सावधान निष्कर्ष नहीं होगा। अतः महाभारतीय स्त्री-शिक्षा का अध्ययन दो स्तरों पर होना चाहिए—एक ओर स्त्री की ज्ञानात्मक **agency** का स्वीकार, दूसरी ओर उस युग की सामाजिक संरचनाओं और अवसर-सीमाओं का आलोचनात्मक विवेचन।

15. शिक्षा, नीति और लोककल्याण

महाभारत में शिक्षा का अंतिम क्षितिज व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता। राजधर्म और नीति-विमर्श में ज्ञान को निर्णय, शासन और लोकव्यवस्था से जोड़ा गया है। इससे शिक्षा का अर्थ 'सक्षम व्यक्ति' के निर्माण से बढ़कर 'उत्तरदायी नागरिक और विवेकशील नेतृत्व' के निर्माण तक पहुँचता है।

सास्त्रचक्षुर्नयपरो भूत्वा भृत्यान्समाहरेत् // ¹³ महाभारतम्, शान्तिपर्व 68.17

‘शास्त्रचक्षुः’ का रूपक विशेष महत्त्वपूर्ण है—शास्त्र स्वयं शासन नहीं करता, वह निर्णय के लिए दृष्टि प्रदान करता है। अतः शिक्षा का उच्चतर फल सूचना नहीं, विवेकपूर्ण निर्णय-क्षमता है। यही बिन्दु समकालीन civic education और ethical leadership से संवाद का आधार बन सकता है।

16. एक समेकित शैक्षिक प्रतिमान

महाभारतीय शिक्षा को उसके विविध प्रसंगों के आधार पर एक क्रम में देखा जा सकता है— जिज्ञासा से अध्ययन, अध्ययन से अभ्यास, अभ्यास से दक्षता, दक्षता से आत्मसंयम, आत्मसंयम से उत्तरदायित्व और उत्तरदायित्व से लोकहित। यह कोई शास्त्रीय रूप से प्रतिपादित सूत्र नहीं, बल्कि विभिन्न प्रसंगों के विश्लेषण से प्राप्त शोधपरक व्याख्यात्मक प्रतिरूप है।

शैक्षिक आयाम	महाभारतीय प्रसंग	मुख्य अन्तर्दृष्टि	समकालीन संवाद
गुरु—शिष्य	धौम्य, द्रोण	मार्गदर्शन, संवाद, परीक्षण	Mentorship
अनुभव	आरुणि, उपमन्यु	जीवन-परिस्थिति में अधिगम	Experiential Learning
अभ्यास	अर्जुन	सतत साधना से दक्षता	Deliberate Practice
स्वाध्याय	एकलव्य	आत्मप्रेरणा और स्वनिर्देशित अधिगम	Self-directed Learning
शास्त्र—कौशल	द्रोणोपाख्यान	बहुविषयक प्रशिक्षण	Multidisciplinary Learning
विनय—आत्मसंयम	शान्तिपर्व, गीता	ज्ञान का आचरण में रूपान्तरण	Value Education
नेतृत्व	राजधर्म	स्वानुशासन और विवेकपूर्ण निर्णय	Ethical Leadership
सामाजिक पहुँच	एकलव्य	प्रतिभा और अवसर का सम्बन्ध	Inclusive Education

17. आलोचनात्मक विमर्श

महाभारतीय शिक्षा को आधुनिक आदर्श के रूप में ग्रहण करते समय ऐतिहासिक दूरी का ध्यान रखना आवश्यक है। प्राचीन सामाजिक संरचना और वर्तमान लोकतांत्रिक-संवैधानिक व्यवस्था समान नहीं हैं। इसलिए महाभारत से संस्थागत पुनरुत्पादन नहीं, बल्कि वैचारिक पुनर्पाठ अपेक्षित है।

विशेषतः एकलव्य-प्रसंग यह चेतावनी देता है कि उत्कृष्टता और अवसर की चर्चा अलग-अलग नहीं की जा सकती। दूसरी ओर आरुणि, अर्जुन और विदुर के प्रसंग बताते हैं कि अनुशासन, अभ्यास, विवेक और उत्तरदायित्व शिक्षा के दीर्घकालिक परिणाम हैं। अतः चयनात्मक पुनर्पाठ में न तो अतीत का रोमानीकरण होना चाहिए और न उसकी समस्त शैक्षिक विरासत का निषेध।

18. समकालीन शिक्षा में महाभारतीय सूत्रों की उपादेयता

18.1 गुरु से **Mentor** तक

गुरु-शिष्य सम्बन्ध का सार आधुनिक शिक्षा में निरंकुश अधिकार नहीं, बल्कि मार्गदर्शन, संवाद और उत्तरदायित्वपूर्ण mentorship के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

18.2 पाठ्यपुस्तक से अनुभव तक

आरुणि का प्रसंग समस्या-समाधान, वास्तविक परिस्थितियों में सीखने और परियोजना-आधारित अधिगम की दिशा में वैचारिक संकेत देता है।

18.3 अभ्यास से दक्षता तक

अर्जुन का उदाहरण परीक्षा-केंद्रित तैयारी से आगे नियमित, लक्षित और आत्ममूल्यांकन-आधारित अभ्यास की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

18.4 स्वाध्याय और डिजिटल अधिगम

एकलव्य का प्रसंग आत्मप्रेरणा की शक्ति को सामने लाता है; आधुनिक डिजिटल संसाधन इस शक्ति को व्यापक अवसर दे सकते हैं, बशर्ते मार्गदर्शन और विश्वसनीय ज्ञान-स्रोत भी उपलब्ध हों।

18.5 ज्ञान से आत्मसंयम तक

गीता और शान्तिपर्व के सूत्र शिक्षा को reflective practice, self-regulation और ethical conduct से जोड़ने की प्रेरणा देते हैं।

18.6 शिक्षा और सामाजिक न्याय

एकलव्य का आलोचनात्मक पुनर्पाठ अवसर-समानता, संसाधन-सुलभता और प्रतिभा की निष्पक्ष पहचान के प्रश्न को आधुनिक शिक्षा के केन्द्र में लाता है।

19. भारतीय ज्ञान-परम्परा के साथ समकालीन संवाद

भारतीय ज्ञान-परम्परा में शिक्षा का मूल प्रश्न केवल 'क्या जानें?' नहीं, बल्कि 'ज्ञान के कारण मनुष्य में क्या परिवर्तन हो?' है। महाभारत में यह प्रश्न अनेक चरित्रों और परिस्थितियों के माध्यम से खुलता है। धौम्य-परम्परा जीवन-सापेक्ष अधिगम को, अर्जुन अभ्यास को, एकलव्य स्वाध्याय और पहुँच के प्रश्न को, तथा शान्तिपर्व आत्मसंयम और लोकनीति को सामने लाता है।

इसलिए भारतीय ज्ञान-परम्परा को समकालीन शिक्षा में लाने का अर्थ पुराने संस्थानों की हूबहू पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि ज्ञान, आचरण, विवेक, कौशल और लोकदायित्व की अन्तर्सम्बद्धता को नए शैक्षिक संदर्भ में पुनर्विचार करना है।

20. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के साथ वैचारिक संवाद

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समग्र विकास, बहुविषयकता, अनुभवात्मक अधिगम, भारतीय ज्ञान-परम्परा, नैतिक एवं संवैधानिक मूल्यों तथा कौशल-विकास पर बल दिया गया है। इन लक्ष्यों और महाभारतीय शिक्षा-विमर्श के बीच कुछ वैचारिक समानताएँ दिखाई देती हैं; किन्तु इन्हें ऐतिहासिक समानता नहीं माना जाना चाहिए।

महाभारतीय सूत्र	समकालीन शैक्षिक संवाद
गुरु—शिष्य संवाद	Mentorship
आरुणि—उपमन्यु	Experiential Learning
अर्जुन का अभ्यास	Competency / Deliberate Practice
एकलव्य का स्वाध्याय	Self-directed Learning
शास्त्र—कौशल समन्वय	Multidisciplinary Education
आत्मसंयम और विनय	Value Education
राजधर्म	Ethical Leadership
लोकहित	Social Responsibility

यहाँ 'संवाद' का अर्थ वैचारिक अनुवर्तन है, न कि यह दावा कि आधुनिक नीतियाँ सीधे महाभारत से निर्मित हुई हैं। आधुनिक शिक्षा को संवैधानिक समानता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सामाजिक न्याय की वर्तमान शर्तों के भीतर ही इन प्राचीन सूत्रों का पुनर्पाठ करना होगा।

21. निष्कर्ष

महाभारत में शिक्षा किसी एक पाठशाला, आश्रम या विषय तक सीमित नहीं है। वह जीवन के विविध कर्मक्षेत्रों में मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया है। धौम्य-आश्रम में सेवा और समस्या-समाधान, अर्जुन में अभ्यास और एकाग्रता, एकलव्य में स्वाध्याय और संस्थागत पहुँच का प्रश्न, द्रोणोपाख्यान में बहुविषयक कौशल तथा शान्तिपर्व में आत्मसंयम और राजधर्म—ये सभी शिक्षा के अलग-अलग आयाम प्रस्तुत करते हैं।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि महाभारतीय शिक्षा-दृष्टि की गहराई किसी एक सूत्र या एक आदर्श चरित्र में नहीं, बल्कि ज्ञान और जीवन के बीच उसके द्वारा स्थापित सम्बन्ध में है। शिक्षा का फल तब सार्थक है जब ज्ञान दृष्टि को परिष्कृत करे, अभ्यास दक्षता दे, विनय अहंकार को नियंत्रित करे, आत्मसंयम निर्णय को परिपक्व बनाए और दक्षता लोकदायित्व से जुड़े।

समकालीन शिक्षा के लिए महाभारत की सबसे महत्वपूर्ण देन किसी प्राचीन संस्थागत ढाँचे की पुनर्स्थापना नहीं, बल्कि शिक्षा के प्रयोजन पर पुनर्विचार है। 'जानना' और 'करना' के साथ 'कैसे जीना है' और 'अपने ज्ञान का उपयोग किसके लिए करना है'—इन प्रश्नों को शिक्षा के केन्द्र में रखना ही भारतीय ज्ञान-परम्परा के साथ वास्तविक संवाद है।

सन्दर्भ-सूची –

1. श्रीमद्भगवद्गीता 4.38—ज्ञान की पवित्रकारी शक्ति।
2. महाभारतम्, शान्तिपर्व, 68.15—विद्याभ्यास, विनय तथा धर्मार्थ-संपन्नता के सम्बन्ध का प्रतिपादन।
3. महाभारतम्, आदिपर्व, धौम्योपाख्यान, 1.3.21–23—आरुणि द्वारा जल-प्रवाह रोकने का प्रसंग।
4. श्रीमद्भगवद्गीता 4.34—प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा के माध्यम से ज्ञान-प्राप्ति।
5. महाभारतम्, आदिपर्व 1.123.1—अर्जुन का गुरुसेवा और अस्त्रविद्या में परिश्रम।
6. श्रीमद्भगवद्गीता 6.35—अभ्यास और वैराग्य द्वारा मनोनिग्रह।
7. महाभारतम्, आदिपर्व 1.123.33—, कलव्य से गुरु-दक्षिणा की माँग।
8. श्रीमद्भगवद्गीता 2.4—भीष्म और द्रोण के प्रति अर्जुन की नैतिक दुविधा।
9. श्रीमद्भगवद्गीता 2.50—'योगः कर्मसु कौशलम्' का कर्म और कौशल सम्बन्धी सूत्र।
10. श्रीमद्भगवद्गीता 5.18—समदर्शिता का ज्ञानात्मक एवं नैतिक आयाम।
11. श्रीमद्भगवद्गीता 6.5—आत्मोन्नति और आत्मनियमन का सिद्धान्त।
13. महाभारतम्, शान्तिपर्व 68.12—आत्मविनय को नेतृत्व के प्रथम सोपान के रूप में प्रस्तुत करने वाला सूत्र।
14. महाभारतम्, शान्तिपर्व 68.17—शास्त्र, ज्ञान, विनय और नीतिपरक निर्णय का सम्बन्ध।

प्रामाणिक सन्दर्भ-सूची-

1. वेदव्यास, महाभारतम्, विशेषतः आदिपर्व, उद्योगपर्व, द्रोणपर्व, शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व।
2. श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत के भीष्मपर्व का अंश।
3. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली-आचार्य, स्वाध्याय, सत्य और धर्म सम्बन्धी उपदेश।
4. कौटिल्य, अर्थशास्त्रम्, शिक्षा, अनुशासन और राजधर्म सम्बन्धी प्रकरण।
5. मनुस्मृति, आचार, ब्रह्मचर्य एवं विद्याध्ययन सम्बन्धी प्रकरण।
6. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नई दिल्ली, 2020.
7. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, Guidelines for Incorporating Indian Knowledge Systems in Higher Education Curricula, नई दिल्ली।

8. R. K. Mookerji, Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist, Motilal Banarsidass, Delhi.
 9. S. Altekar, Education in Ancient India, Nand Kishore & Bros., Varanasi.
 10. P. V. Kane, History of Dharmaśāstra, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
-